Blueprint:

Blueprint for **" Kumaon Himalaya Ke Lok Nritya"**
Under the Scheme Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India, sanctioned under Sanction Letter No-
28-6/ICH-Scheme 69/ 2015-16 Dated: **29 . Jan, 2016**

INTRODUCTION

कुमाऊं हिमालय के लोक नृत्य

उत्तराखंड की विभिन्न लोक कलाओं के बीच कुमाँऊनी लोकनृत्य परम्परा मध्यकाल से ही लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगी । कुमाऊं उत्तराखंड राज्य की एक मह त्वपूर्ण क्षेत्र है जिस में पिथौरागढ़, नैनीताल अल्मोड़ा, चम्पावत बागेश्वर और उधमसिंग नगर आते हैं।

कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन या खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह लोकनृत्य का महत्त्व है। कुमाँऊ में लोकनृत्य की परंपरा अलग अलग शैली में हर जगह लोक संस्कृति के वाहक के रूप में मौजूद है । कुमाऊनी लोकनृत्य में लोकगायन शैली के लोक रंग शामिल हैं, इन गीतों में मौसम का वर्णनं मिलता है, कुमाऊनी लोकनृत्य में धर्म,पशु और इंसानी रिश्ते हैं , इनमे परंपरा और जीवन शैली के विभिन् रूप शामिल है, ये श्रॅम के लोकनृत्य है, कुमाऊं मे बच्चे के जनम संस्कार से लेकर विवाह संस्कार तक कुमाऊनी लोकनृत्य-गीतों की एक लम्बी कड़ी है.लोकगीतों में न्यौली परम्परा है , लोक नृत्यों में गीत छपेली, चांचरी में समाये हैं ओर शगुराखरों में संस्कार है। आधुनिक परिवेश के समयचक्र में पहाड़ों से बहुत सारे लोक नृत्य लुप्त होते जा रहे हैं, जिन को संकलित करना आवश्यक है ।

OBJECTIVE

अध्ययन के आधार पर कुमाऊनी लोकनृत्य शोध ग्रन्थ का तैयार करना .

IMPLIMENTATION

चरण एक -

क्षेत्र भ्रमण, इतिहासकारों,स्थानीय लोगों व लोकगायको से वार्ता, सम्बंधित पुस्तकों व पूर्व में किये कार्य का अध्ययन व लोकनृत्य- लोक गीतों का संकलन।

चरण दो –

अध्ययन के आधार पर शोध ग्रन्थ का तैयार करना ,

चरण तीन -

संगीत नाटक अकादमी को शोध ग्रन्थ सौंपना

प्रस्तुत शोध कार्य मुख्यतः निम्न अध्यायों के अन्तर्गत संपन्न होगी –

अध्याय एक

कुमाऊं का ऐतिहासिक व भूगौलिक परिचय, लोक जीवन .

अध्याय दो

कुमाँऊनी लोकनृत्य के प्रकार

अध्याय तीन -

लोकनृत्य और लोकगीतों के मध्य सम्बन्ध

अध्याय चार -

लोकनृत्य और घेरे की परम्परा

अध्याय पांच-

लोकनृत्य -लोकगीत परम्परा, और समाज

उपसंहार

LOCALE

कुमाऊं कमिश्नरी के पहाड़ी ज़िलों अल्मोड़ा. बागेश्वर , नैनीताल, पिथौरागढ़ ,चम्पावत

DATES

Research Work will commence from 1st May 2016 to 31St Oct 2016.

CONCLUSION

After the completion research , we shall submit our work to 'Sangeet Natak Academy'.

Apoorva Ahsan Bakhsh
D 604 Green Lwan Apartment

Opp,St,Pious College

Aarey Road , Goregaon East

Mumbai 63

Maharashtra

अंतिम - कार्य रिपोर्ट

कुमाऊं के लोकनृत्य :

Under the Scheme Safeguarding the Intangible Cultural Heritage and Diverse Cultural Traditions of India

File No. 28-6/ICH-Scheme/69 /2015-16 29 Jan 2016

Apoorva Ahsan Bakhsh
Add: D-604, Greenlawn Apt.
Opp. Saint Pius College,
Aarey Road, Goregaon (East),
Mumbai 400063

कुमाऊं के लोकनृत्य

कुमाऊँ की भौगोलिक और ऐतिहासिक स्थिति -

कुमाऊं उत्तराखंड राज्य का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिस में पिथौरागढ़, नैनीताल , अल्मोड़ा, चम्पावत , बागेश्वर और उधमसिंगनगर ज़िले आते हैं। कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन , खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह लोकनृत्य का बहुत महत्त्व है।

यहाँ के लोकनृत्य का अध्यन करने से पहले कुमाऊं के इतिहास और भौगोलिक स्थिति को समझना आवश्यक है, जनपद - अल्मोड़ा,पिथौरागढ़, चम्पावत, नैनीताल , बागेशवर व उधम सिंग नगर उत्तराखण्ड की कुमाऊँ कमिश्नरी में आते हैं।

कुमाऊँ हिमालय क्षेत्र का प्राचीन काल से पुराणों में उल्लेख होता रहा हैं । उत्तराखण्ड राज्य की सीमायें तिब्बत व नेपाल से मिली हुई है । कुमाऊं के संबंध में इतिहासकारों का मानना है कि आर्यों से पूर्व भारत कि प्राचीन जातियां गन्धर्व , किन्नर, किरात, कोल, भील, तंगण, खश और दरद आदि इसी भूभाग में रहती थीं. प्राग ऐतिहासिक सभ्यताओं के कई प्रमाण यहाँ मिले हैं, प्रमाण अल्मोड़ा के पास लाखु उडियार है।

इस प्रान्त का नाम कूर्मांचल या कुमाऊँ होने के विषय में यह किम्वदन्ती कुमाउँ के लोगों में प्रचलित है कि जब विष्णु भगवान् का दूसरा अवतार कूर्म अथवा कछुवे का हुआ, तो यह अवतार चंपावती नदी के पूर्व कूर्म पर्वत में जिसे आजकल कांड़देव या कानदेव कहते हैं, ३ वर्ष तक खड़ा रहा। उस समय देवतागण तथा नारदादि मुनीश्वरों ने उसकी प्रशंसा की । उस कूर्म (कच्छप)-अवतार के चरणों का चिन्ह पत्थर में हो गया और वह अब तक विद्यमान होना कहा जाता है।तब से इस पर्वत का नाम कूर्मांचल (कूर्मअअचल) हो गया ।

कूर्मांचल का प्राकृत रुप 'कूमू' बन गया और यही शब्द भाषा में 'कुमाऊँ' में परिवर्तित हो गया। पहले यह नाम चंपावत तथा उसके आसपास के गाँवों को दिया गया। तत्पश्चात काली नदी के किनारे के प्रान्त-चालसी, गुमदेश, रेगड़ू, गंगोल, खिलफती और उन्हीं से मिली हूई ध्यानिरौ आदि पट्टियाँ भी काली कुमाऊँ नाम से प्रसिद्ध हुई। ज्यों-ज्यों चंदों का राज्य-विस्तार बढ़ा, तो कुमाऊँ इस सारे क्षेत्र का नाम हो गया।

इस क्षेत्र की सीमायें चीन, तिब्बत एवं नेपाल की अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं को छूती हैं। उत्तर प्रदेश की सभी छोटी-बड़ी नदियों का उद्‌गम इसी क्षेत्र से हुआ है। क्षेत्र में छोटी-छोटी पहाड़ियों से लेकर उँची पर्वत श्रंखलाये तक विद्‌यमान हैं। इनमें अधिकांश समय तक बर्फ से ढकी रहने वाली नन्दा देवी, त्रिशुल, केदारनाथ, नीलकंठ तथा चौखंभा पर्वत चोटियाँ हैं। परिस्थितकीय विभिन्नताओं के कारण इस क्षेत्र में भिन्न-भिन्न वनस्पतियाँ व जीव-जन्तु विद्‌यमान हैं।

कुमाऊँ में सबसे पहले कत्यूरी राजाओं ने शासन की बागडोर संभाली। राहुल सांकृत्यायन ने इस समय को सन् ८५० से १०६० तक का माना है। कत्यूरी शासकों की राजधानी पहले जोशीमठ थी, परन्तु बाद में यह कार्तिकेयपुर हो गई। यद्‌यपि इस विषय में भी विद्‌वानों व इतिहासकारों में मतभेद है। कुमाऊँ निवासी 'कत्यूर' को लोक देवता मानकर पूजा अर्चना करते हैं। यह तथ्य प्रमाणित करता है कि कत्यूर शासकों का प्रजा पर बहुत प्रभाव था क्योंकि उन्होंने जनता के हित में मन्दिर, नाले, तालाब व बाजार का निर्माण कराया। पाली पहाड़ के 'ईड़ा' के बारह खम्भा में इन राजाओं की यशोगाथा अंकित है।

तत्कालीन शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों से पता चलता है कि कत्यूर राजा वैभवशाली तथा प्रजावत्सल थे तथा काली, कुमाऊँ, डोरी, असकोट, बारामंडल, द्‌वाराहाट, लखनपुर तक इनका शासन फैला हुआ था। ११वीं शताब्दी के बाद इनकी शक्ति घटने लगी। राजा धामदेव व ब्रह्मदेव के बाद कत्यूरी शासन समाप्त होने लगा था।

डॉ॰ त्रिलोचन पांडे लिखते हैं- 'कत्यूर शासकों का उल्लेख मुख्यतः लोक गाथाओं में हुआ है। प्रसिद्ध लोक गाथा मालसाई का सम्बन्ध कत्यूरों से है। कत्यूरी राजाओं की संतान असकोट, डोरी, पाली, पछाऊँ में अब भी विद्‌यमान है।

पाँचवी सदी के पश्चात कुमाऊं क्षेत्र में कत्यूरी राजाओं का शासन रहा किन्तु उनके शासनकाल का क्रमबध्द इतिहास उपलब्ध न होने के कारण इतिहासकारों में मत-भिन्नताएं देखने को मिलती है. सन् 850 के आस-पास कत्यूरियों ने अपना राज्य हिमालय में स्थापित कर दिया था और संभवतः सन् 1015 तक उनका शासन रहा. कत्यूरियों के प्रथम प्रतापी राजा ललितशूर से लेकर अंतिम राजा वीरदेव तक तेरह पीढियों ने कुमाऊं में शासन किया ।

इस काल में कुमाऊँ में कुछ मुख्य भाषाएँ-उपभाषाएं इस प्रकार थी -

अल्मोड़िया कुमाऊँनी

- काली कुमाऊँ की कुमाऊँनी
- सोर इलाके की कुमाऊँनी
- पाली पछाऊँ की कुमाऊँनी
- दानपुर की कुमाऊँनी

- जोहार (भोटिया) भाषा
- गोरखाली
- डोट्याली
- थारू
- बोक्षा
- भावर की उपभाषाएं

कत्यूरी वंश के अंतिम राजाओं की शक्ति क्षीण होने पर छोटे-छोटे राज्य स्वतंत्र हो गए, तथा उन्होंने संगठित होकर अपने राज्य का विस्तार कर लिया। सम्पूर्ण कुमाऊँ में कोई एक शक्ति न थी, जो सबको अपने अधीन कर पाती। इस संक्रान्ति काल में राज्य बिखर गया तथा कत्यूरी राजाओं द्वारा प्रारंभ किए गए विकास कार्य या तो समाप्त हो गए या उनका स्वरूप ही बदल गया।

कुछ इतिहासकार चन्द्रवंशी शासन काल का प्रारंभ १२६१ ई. से मानते हैं तो कुछ सन ९५३ से। बद्रीदत्त पांडे के अनुसार चन्द्रवंश का प्रथम राजा सोमचन्द सन् ७०० ई. के आसपास गद्दी पर बैठा।

चन्द्रवंशी राजाओं के कुमाऊँ में आने का कारण भी स्पष्ट नहीं है। विद्वानों के अनुसार कत्यूरी शासन की समाप्ति के बाद देशी राजाओं के अत्याचारों से दुखी प्रजा कन्नौज के राजा सोमचन्द के पास गई और उन्हें कुमाऊँ में शांति स्थापना के लिए आमंत्रित किया।

अन्य इतिहासकारों के अनुसार सोमचन्द इलाहाबाद के पास स्थित झूंसी के राजपूत थे। सोमचन्द्र के बद्रीनाथ यात्रा पर आने पर सूर्यवंशी राजा ब्रह्मदेव ने उन्हें अपना मित्र बना लिया। सोमचन्द्र ने अपने व्यवहार एवं परिश्रम से एक छोटा-सा राज्य स्थापित कर लिया तथा कालांतर में अपने राज्य का विस्तार कर लिया।

इस प्रकार कुमाऊँ में चन्द्रवंश की स्थापना हुई। सम्पूर्ण काली, कुमाऊँ, ध्यानीरौ, चौमेसी, सालम, रंगोल पट्टियाँ चंद्रवंश के अधीन आ गई थीं। राजा महेन्द्र चंद (१७९० ई.) के समय तक सम्पूर्ण कुमाऊं में चन्द राजाओं का पूर्ण अधिकार हो चुका था। साढ़े पांच सौ वर्षों की अवधि में चन्दों ने कुमाऊँ पर एकछत्र राज्य किया।

अठारहवीं सदी के अंतिम दशक में राग-द्वेष के कारण चंद राजाओं की शक्ति बिखर गई थी। फलतः गोरखों ने अवसर का लाभ उठाकर हवालबाग के पास एक साधारण मुठभेड़ के बाद सन् १७९० ई. में अल्मोड़ा पर अपना अधिकार कर लिया। गोरखा शासन काल में एक ओर शासन संबंधी अनेक कार्य किए गए, वहीं दूसरी ओर जनता पर अत्याचार भी खूब किए गए। गोरखा राजा बहुत कठोर स्वभाव के होते थे तथा साधारण-सी बात पर किसी को भी मरवा देते थे।

इसके बावजूद चन्द राजाओं की तरह ये भी धार्मिक थे। जनता पर नित नए कर लगाना, सैनिकों को गुलाम बनाना, कुली प्रथा, बेगार इनके अत्याचार थे।

ट्रेल ने लिखा है- 'गोरखा राज्य के समय बड़ी विचित्र राज-आज्ञाएँ प्रचलित की जाती थीं, जिनको तोड़ने पर धन दंड देना पड़ता था। गोरखों के सैनिकों जैसे स्वभाव के कारण कहा जा सकता है कि इस काल में कुमाऊँ पर सैनिक शासन रहा। ये अपनी नृशंसता व अत्याचारी स्वभाव के लिए जाने जाते थे।

जब अंग्रेजों ने इस राज्य पर आक्रमण किया, तो एक प्रकार से कुमाऊँ ने मुक्ति की ही साँस ली। २७ अप्रैल १८१५ ई. को अंग्रेजों के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर करके गोरखाओं ने कुमाऊँ की सत्ता अंग्रेजों को सौंप दी।

ई. गार्डनर ने गोरखों से कुमाऊँ की सत्ता का कार्यभार लिया था। १८९१ तक कुमाऊँ कमिश्नरी में कुमाऊँ, गढ़वाल और तराई के तीन जिले शामिल थे। उसके बाद कुमाऊँ को अल्मोड़ा व नैनीताल दो जिलों में बाँटा गया। ट्रैल, लैशिगंटन, बैटन, हेनरी, रामजे आदि विभिन्न कमिश्नरों ने कुमाऊँ में समय-समय पर विभिन्न सुधार तथा रचनात्मक कार्य किए।

जमीन का बंदोबस्त, लगान निर्धारण, न्याय व्यवस्था, शिक्षा का प्रसार, परिवहन के साधनों की उपलब्धता के कारण अंग्रेजों के शासनकाल में कुमाऊँ की खूब उन्नति हुई। हेनरी, रामजे के विषय में बद्रीनाथ पांडे लिखते हैं- 'उनको कुमाऊँ का बच्चा-बच्चा जानता है। वे यहाँ के लोगों से हिल-मिल गए थे। घर-घर की बातें जानते थे। पहाड़ी बोली भी बोलते थे। किसानों के घर की मंडुवे की रोटी भी खा लेते थे।' अंग्रेजों ने शासन व्यवस्था में पर्याप्त सुधार किए, वहीं अपने शासन को सुदृढ़ बनाने के लिए कठोरतम न्याय व्यवस्था भी की।

१८५७ के प्रथम स्वतंत्रता संग्रम में कुमाऊँ के लोगों की भागीदारी उल्लेखनीय रही, १८७० ई. में अल्मोड़ा के शिक्षित व जागरूक लोगों ने मिलकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक समस्याओं के समाधान के लिए चंद्रवंशीय राजा भीमसिंह के नेतृत्व में एक क्लब की स्थापना की। १८७१ में 'अल्मोड़ा अखबार' का प्रकाशन प्रारंभ किया। १५ अगस्त १९४७ को सम्पूर्ण भारत के साथ कुमाऊँ भी स्वाधीन हो गया।

कुमाऊं के लोक नृत्य व प्रकार -

मध्य काल में कुमाऊँ के आँगनों ,मेलों एवं उत्सवों में लोक नृत्यों का आयोजन शुरू होने लगा था , जिन्हें पहाड़ी जीवन दर्शन में पूर्णत: स्थान दिया गया है, लोक कलाओं के बीच उत्तराखंड राज्य में कुमाँऊनी लोकनृत्य परम्परा मध्यकाल से ही लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगी, इसका प्रमाण वह लोकगीत हैं,जिनमे मध्यकाल का वर्णन है ।

मध्य काल में कुमाऊं के विभिन्न अंचलों के अपने-अपने तरह के लोकनृत्य होने लगे, उनमे लोक गीत शामिल थे, लोकगीतों में विविधता पायी जाने लगी, इन लोक नृत्यों में प्रकृति और पशुओं के लिए भी पर्याप्त स्थान मिलने लगा ,क्यों की यहाँ का धर्म, पशु और इंसानी रिश्ते को महत्व देता था लोक नृत्य में जहां श्रम के गीत थे, वहीँ धार्मिक- और सामजिक गीत भी शामिल थे ।

लोक नृत्यों में कला तो स्वाभाविक है, सांथ में ही इन में आध्यत्मिकता भी होती है जो लोक को पवित्र बनाती है । लोक गायक जानता था की मन और कर्म की पवित्रता, मधुरता, उन्मुक्तता, गत्यात्मकता और जीवन्तता है जो मानवतावादी जीवन मूल्यों से जुड़ने के लिए आवश्यक है।

आठवीं सदी में कुमाऊं में चंद वंश के राजाओं का अधिकार हो गया , इसी अवधि में कुमाऊं में लोकनृत्य परंपराओं का भी उदय हुआ, अल्मोड़ा, सोर (पिथौरागढ) चम्पावत, बागेश्वर और बैजनाथ आदि इलाके लोककलाओं के केंद्र के रूप में स्थापित हुये, जिनका आधार कुमाऊं के छोटे-छोटे ग्रामीण अंचल थे ।

ग्रामीण लोक जीवन का सामाजिक आधार कृषि-श्रम व्यवस्था पर आधारित था , परन्तु लोक व जनजाति दोनों परम्पराओं में लोकनृत्य का विशेष महत्व था धार्मिक कार्यों, कृषि, मेलों, उत्सवों, संस्कारों व परम्पराओं में यह लोकनृत्य स्थान पाने लगे ,जो एक प्रकार का अभिनीत गीत थे ।

कुमाऊं में लोकनृत्य सब कलाओं में प्रभावशील कला है, यह सब के मन को मोह लेता है। यह एक वह कला है जो जीवन को आनंद से भर देता है। लोकनृत्य आनंद का प्रतीक है। लोक संस्कार को एक उत्सव का रूप देकर उसकी सामाजिक स्वीकार्यता को स्थापित करना भारतीय लोक संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता रही है। कुमाऊं में लोकनृत्य व उत्सव. त्यौहारों का सम्बन्ध किसी न किसी मिथक, धार्मिक मान्यताओं, परम्पराओं और ऐतिहासिक घटनाओं से जुड़ा होता है ,जिसने इसे स्वीकारा और साधना से इसे सिद्ध बनाया, उसने अपने जीवन का आनंद प्राप्त किया है ।

कुमाऊं लोकनृत्यों की विविधता के मामले में बहुत विकसित हैं ,प्राकृतिक रूप से इन लोकनृत्यों को लोगों के जीवन जीने के हिसाब से और लोगों के नृत्य करने के अनुसार ढ़ाला गया है। इन सभी लोकनृत्यों में धार्मिक रंगों को देखा जा सकता है, चाहे वे फसल के संबंध में मंचन हों या फिर बीजों की बुवाई या त्यौहार इत्यादि हों ।

सामाजिक, धार्मिक और वैवाहिक स्तर पर इन लोकनृत्यों को वर्गीकृत कर सकते हैं । कई नृत्य ऐसे हैं जिनमें पुरूष और महिलाएं साथ में नृत्य करते हैं। इनमें से कई नृत्य पुरूषों द्वारा अकेले ही किए जाते हैं, कुछ सिर्फ महिलाओं के द्वारा भी किए जाते हैं। अधिकांश लोक नृत्य गानों के साथ किये जाते हैं, जिन्हें खुद ही गाया जाता है और कभी-कभी संगीतकारों के एक समूह द्वारा भी इसे गाया जाता है, कुछ लोकनृत्य संगीत उपकरणों की संगत के साथ ही किए जाते हैं।

कुमाऊं के कुछ लोकनृत्यों में यह बात देखी गई है की लोक कलाकार नृत्य में घेरे करते हैं, उनकी रीति-रिवाज और पोशाक - गहने उस जगह का प्रतिनिधित्व करते हैं जहां से वे संबंध रखते हैं या आए हुए हैं। कुमाऊं के लोकनृत्यों में उनकी आध्यात्मिक क्षमता का प्रदर्शन वाकई अद्भुत है। इन लोकनृत्यों में कलाकारों और दर्शकों में कोई अंतर नही है। अधिकांशतः लोक नृत्य बहुत आसान है लेकिन इस सादगी के नीचे परिकल्पना की गहराई जो एक उच्च कलात्मक व्यवस्था है।

कुमाऊं के लोकनृत्य निम्न प्रकार के हैं-

चांचरी लोक नृत्य गीत

कुमाऊं का चांचरी लोकनृत्य बहुत ही गतिमय नृत्य है , इस लोकनृत्य को समूह में किया जाता है। इस में पैरों का संचालन देखने लायक होता है , कदम लचक के साथ आगे बढ़ना ,इस नृत्य को आकर्षक बना देता है ,नृत्य गीत चांचरी की उत्पत्ति 'चर्चरी' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है नृत्य एवं ताल समन्वित गीत ।

यह लोकनृत्य उत्तराखण्ड के कुमाऊँ अंचल के नृत्य गीतों की एक विशिष्ट शैली है, मेले, उत्सवों, पर्वों एवं त्यौहारों के अवसर पर यह गीत गाये जाते हैं, नृत्य गीत होने के कारण चांचरी में गति और पराक्रम का विशेष महत्व होता है, वृत्ताकार परिकल्पना कर यह नृत्य गीत प्रदर्शित किये जाते हैं सोर और दानपुर में यह हर खास मोके किया जाता है।

चाँचरी मुख्य रूप से कुमाऊं क्षेत्र का सामूहिक लोकनृत्य-गीत है लोक नृत्य को नर नारी लोक वाद्य "हुड़का" को सहारा लेकर करते हैं। यह महिला और पुरुषों द्वारा एक गोल घेरा बनाकर एक दूसरे के कंधों या कमर में हाथ रखकर एक ही ढंग से पाँव और स्वरों का तालमेल बनाकर धीरे धीरे नाच और लोकगीत गायन करना होता है।

घेरे के बीच में एक या एक से अधिक लोक वाद्य "हुड़का" से गीत के धुनों को तान दी जाती है और यह बड़ा ही मनोहारी दृस्य होता है। चाँचरी में दो ग्रुप बन जाते हैं जिसमें से एक ग्रुप दूसरे के गीत के बोलों को दोहराता है। यह लोकगीत संबन्धित लोकदेवता के साथ साथ, प्रेम - श्रृंगार , जीवन-शैली पर आधारित होते हैं।

चांचरी श्रम-परिहार, मनोरंजन और आशु कवि की अभिव्यक्ति की मधुर गुंजार है, जो श्रृंगार प्रधान है यह लोक नृत्य वस्तुत: प्राकृतिक नृत्य है, जिसमे लोक जीवन में अनुकूल किसी न किसी प्रकार के भाव का रूप प्रकट होने लगता है , यह कहा जा सकता है कि लोक जीवन के नृत्यों में कला स्वाभाविक होती है ।

संस्कृति की धारा को सजग बनाये रखने में चांचरी की बड़ी भूमिका होती है। लोकगीतों के माध्यम से सांस्कृतिक चेतना का विकास होता है और वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती रहती है।

चांचरी लोक गीतों की भाषा में निम्न इलाकों की भाषा का प्रभाव दीखता है -

- काली कुमाऊँ की कुमाऊँनी
- सोर इलाके की कुमाऊँनी
- पाली पछाऊँ की कुमाऊँनी
- दानपुर की कुमाऊँनी

कुमाऊं में लोक नृत्य व संगीत प्राचीन काल से इंसान के जीवन का अटूट हिस्सा रहा है। एक मान्यता के अनुसार शब्दों की ईजाद से पहले संकेत और मुद्राओं के माध्यम से इंसान ने अपने भाव जैसे प्रेम, वात्सल्य, क्रोध, भय, दया आदि की अभिव्यक्ति नृत्य, संगीत व चित्रों के ज़रिये की।

यह कलाएं हमारे जीवन में इतना घुल मिल जाती हैं कि, हमें यह आभास भी नहीं होता कि हम साझी विरासत जी ही नहीं रहे हैं बल्कि इसे और विकसित कर रहे हैं। बदलते मौसम, त्यौहार , फसल काटना, सावन का आना, नई फसल बोना, इन सबका हमारे जीवन में महत्व है और हम इसकी अभिव्यक्ति संगीत, नृत्य व अन्य कलाओं के माध्यम से करते हैं।

चांचरी लोकगीत उत्तराखंड के जनमानस के मानस पटल पर उनके असंख्य आराध्य देबी-देबतौं की आराधना -आह्वाहन के मंत्रों ,लोकगीतों ओर साहित्यिक धरोहर ओर उनकी आस्था के बीज रूप में भी बिराजमान है और उनके समस्त सामाजिक क्रियाकलापौं,विवाह -पूजा संस्कारों , तीज -त्योहारौं, आदि में रच बस गए है |

कुमाऊं में प्रत्येक ग्रामीण-शहरी अचंल अपनी परम्पराओं से जुड़े हैं , हर इलाके की अपनी एक खास शैली होती है । शादी-ब्याह, सगाई, जन्म आदि को संगीत, नाटक, नृत्य के माध्यम से सामूहिक रूप से मनाते हैं। लोक नृत्य, समाज व इंसान का अभिन्न अंग है। कुमाऊं में लोक नृत्य परम्परा न सिर्फ इतने सालों से जीवित है, बल्कि अपनी अंदरूनी शक्ति व सजीवता से कला को नए रूप देने में सक्षम है यानि कि लोक आपस में संबंधित हैं। इस कला में अपने शरीर के माध्यम से इंसान अपनी बात कहता है। लय, ताल व सुरों में पिरोकर वह अपनी बात अपने सम्पूर्ण शरीर के माध्यम से लोगों तक पहुंचता है। जहां एक ओर लोक नृत्य में सरलता व सहजता होती है वहीं शास्त्राय नृत्यों में शैलीगत भाव भंगिमाओं का वर्चस्व होता है। लोक और शास्त्रीय नृत्य दोनों ही आम इंसान के जीवन काल की गाथा बताते हैं।

चांचरी लोक नृत्य लोक अर्जित भावनाओं के सरल-सहज उदगार हैं,उनमें परंपरा स्वत: संपृक्त हैं। शिष्ट साहित्य में परंपरा कृत्रिम और अपेक्षाकृत आरोपित होती है। जबकि लोक साहित्य में यही इसका प्राण है।यही कारण है कि इसमें कवि का श्रेय एक व्यक्ति न लेकर सभी लोकगायक ग्रहण करते हैं और इसका प्रत्येक गायक कवि नहीं, लोकगायक या लोकगीतकार कहलाता है। इसी आधार पर यह भाषा, बोली, जाति, वर्ण,पद के भेद को दूर करने में सक्षम और लोक को लोक बनाये रखने तथा समाज के प्रत्येक मनुज को समरस का सिद्धान्त संस्कार के रूप में प्रदान करने का संयोजन करता है

छपेली लोक नृत्य गीत –

कुमाऊँ एक रंगीला क्षेत्र है, यहाँ छपेली लोकप्रिय लोकनृत्य है ।,जिसमे मन के भाव शरीर के सांथ लयमय हो जाते है. गाँव के आँगन में इस नृत्य में पुरुष हुड़का-वादक गाता हुआ लोकनृत्य करता

है और महिला नर्तकी गीतों के भावों के अनुकूल नृत्य करती है । छपेली संवाद प्रधान गीतों के अन्तर्गत वे सभी गीत आ जाते हैं जिनका विषय प्रश्नोत्तर होता है ।

प्राय: ऐसे गीत पुरुष और स्त्री के संवादों वाले होते हैं । ऐसे गीत स्त्री-पुरुषों के संयुक्त रुप में अथवा पृथक-पृथक भी गाये जाते हैं । स्त्री-पुरुषों में प्रेमी-प्रमिका, पति-पत्नी और जीजा-साली प्रमुख पात्र होते हैं । किसी-किसी गीत में भाई-बहन, माँ-बेटी, पिता-पुत्र अथवा दो मित्र भी परिसंवादात्मक गीतों के नायक एवं नायिकाएँ हो जाते हैं ।

ऐसे गीतों में अत्यन्त नाटकीयता होती है । कुमाऊँनी नृत्य-गीतों में इस प्रकार के नृत्य-गीतों को बड़े चाव से मंचन किया जाता है । दर्शक ऐसे नृत्य-गीतों को देखकर झूम उठते हैं । दृश्य एवं श्रव्य गुणों का अद्भुत मेल छपेली नृत्य में दिखाई देता है ।

छपेली लोकनृत्य के गीत और नृत्य में यौवन का उल्लास छलकता हुआ मिलता है । पद संचालन और अभिनय कमाल का होता हैं, वास्तव में 'छपेली' प्रेमियों के नृत्यगीत हैं । इस नृत्य शैली में जोड़ा बनाकर नृत्य किया जाता है । प्रेमी तथा प्रेमिका के एक हाथ में रुमाल और दूसरे हाथ में दर्पण रहता है । यह संस्कृति का सूंदर उद्धरण है,असल में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है, अपने जीवन में हम जो संस्कार जमा करते हैं, वह भी हमारी संस्कृति का अंग बन जाता है।

'छपेली' लोकनृत्य में नृत्य की गति तीव्र होती है । यह प्रेमी-प्रेमिका के सन्दर्भ में है । 'छपेली' गीतों की एक पंक्ति टेक होती है जिसे गायक (नायक) दो पंक्तियों के अन्तर के बाद दोहराता है । यह स्थायी

पंक्ति गीत विशेष की 'थीम' कही जा सकी है -

ओ हो न्योला न्योला न्योला मेरी सोबना,
दिन-दिन यो यौवन जाण लाग्यो

नृत्य के बीच ,भगनौल आते है, उक्तिपरक सौन्दर्य गीत 'भगनौल' कहे जाते हैं । इन गीतों के साथ प्राय: नृत्य नहीं होता , 'भगनौले' खड़े होकर किसी आलंबन को इंगित कर गाये जाते हैं या संकेत कर गाये जाते हैं । ऐसी भाव दशा में एक प्रकार का भाव प्रधान नृत्य होने लगता है ।

छपेली नृत्य उत्तराखंड़ का एक बहुत पुराना लोकनृत्य है। इस नृत्य का आयोजन आमतौर से शुभ अवसरों पर किया जाता है। लोगों को यह नृत्य देखने में बहुत मज़ा आता है। यह फुर्ती से किया जाने वाला नृत्य है।

कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन या खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह इस लोकनृत्य का महत्त्व है। कुमाँऊ में लोक की परंपरा लोकनृत्य अलग अलग शैली में हर जगह लोक संस्कृति के वाहक के रूप में मौजूद है ।

कहीं कहीं इस नृत्य को समूह में किया जाता है। जीवन की टोली में उनके साथ दस लोग और हैं जो समूह में इस लोकनृत्य को प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य को करते समय लड़कियां अपने बाएं हाथ में एक दर्पण और दूसरे हाथ में रंगीन रुमाल रखती हैं और लड़के उत्तराखंड का वाद्य यंत्र 'हुड़का' के साथ ही मंजीरा और बांसुरी बजाते हैं।

छपेली गीतों की एक पंक्ति मुख्य होती है, जिसे गायक दो पंक्तियों के अंतर के बाद, बार-बार दोहराता है, जिस पर लड़के और लड़कियां मुस्कान के साथ कमर को घुमाते हुए नृत्य करते हैं।

छपेली गीत

ओ बाना , पनुली चकोरा त्वीले धारौ बोला,

ओ लौंडा कुंदन अमीना त्वीले धारौ बोला।

पहाड़ घोड़ो मैदान को होती,

त्वीलें यसी बोली मारी धन छ मेरी छाती।

ओ बाना पनुली चकोरा, त्वीले धारौ बोला॥

इस गीत में प्रेमी अपनी प्रेमिका की तारीफ पहाड़ों के सबसे सुंदर पक्षी चकोरा से करता है।

कुछ ग्रामीण इलाकों में पुरुष ही महिला की भूमिका निभाते दीखते हैं, जो प्रेमिका है है, मेकअप से यह पुरुष महिला प्रेमिका की भूमिका को सजीव बना देता है। स्री-पुरुषों में प्रेमी-प्रमिका, पति-पत्नी और जीजा-साली प्रमुख पात्र होते हैं । किसी-किसी गीत में भाई-बहन, माँ-बेटी, पिता-पुत्र अथवा दो मित्र भी परिसंवादात्मक गीतों के नायक एवं नायिकाएँ हो जाते हैं । ऐसे गीतों में अत्यन्त नाटकीयता

होती है । कुमाऊँनी नृत्य-गीतों में इस प्रकार के नृत्य-गीतों को बड़े चाव से मंचन किया जाता है । दर्शक ऐसे नृत्य-गीतों को देखकर झूम उठते हैं ।

लोक ज्ञान में एक परिकल्पना को सही सिद्व करने के लिये अनेक प्रयोग किये जाते हैं और उसके परिणाम के आधार पर नियम एवं सिद्धांतों का निर्माण होता है। प्रत्येक नियम कुछ विशिष्ट दशाओं में तथा एक निश्चित सीमाओं में ही सत्य होता है। नया प्रयोग नयी परिकल्पनायें देता है और नयी परिकल्पना वैज्ञानिक के मष्तिष्क में वैसा ही एक प्रतिरूप तैयार करता है जैसा किसी कलाकार के मन में उठे किसी विचार को कैनवास पर उतारने से पहले आता है ,अन्तर केवल अभिब्यक्ति का होता है ।

पर्वतीय अंचल का जीवन इतना कठोर व श्रम साध्य है कि मेलों-त्यौहारों के माध्यम से ही वे अपने तन व मन की थकान को मिटा पाते हैं उन्हीं मेलों त्यौहारों में गाये जाने वाले लोकनृत्य व लोकगीतों की एक विधा / ''छपेली'' है 'जिसमें श्रृंगार रस के सभी रंगों को देखा व सुना जा सकता है,जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए छपेली गीतों को लोकगीत कहा जाता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक गीतों में समर्पित कर देता है।

झोड़ा लोकनृत्य गीत-

झोड़ा सामूहिक नृत्य-गीत हैं,पहाड़ों में ग्रामीण घरों के आँगन में झोड़ा नृत्य को देखना एक अद्भुत अनुभव है , आँगन में वृत के बीच में खड़ा हुड़का-वादक गीत की पहली पंक्ति को गाता हुआ नाचता है, जिसे सभी नर्तक दुहराते हैं, झोडों में उत्सव या मेले से सम्बन्धित देवता विशेष की स्तुति भी नृत्यगीत भावनाएँ व्यंजित होती हैं । सामयिक झोड़ों में चारों ओर के जीवन-जगत पर प्रकाश डाला जाता है ।

'झोडे' कई प्रकार के होते हैं । परन्तु मेलों में मुख्यत: धार्मिक और प्रेम प्रधान झोडों की प्रमुखता रहती है यह हाथों को जोड़कर घेरे में होने वाला नृत्य है। यह नृत्य शैली शादी-ब्याह और मेलों का प्रसिद्ध सामूहिक नृत्य है। इसके दो रूप प्रचलित हैं, मुक्तक झोड़े और प्रबंधात्मक झोड़े। प्रबंधात्मक झोड़े में देवी-देवताओं और ऐतिहासिक वीर पुरुषों का चरित्र गान होता है। इस नृत्य को एक दूसरे के हाथ कंधे पर रखकर गोलाकार घूमकर किया जाता है ।

झोड़ा भी मुख्य रूप से कुमाऊं क्षेत्र का सामूहिक नृत्य-गीत है ,यह महिला और पुरुषों द्वारा एक गोल घेरा बनाकर एक दूसरे के कंधों या कमर में हाथ रखकर एक ही ढंग से पाँव और स्वरों का तालमेल बनाकर धीरे धीरे नाच और लोकगीत गायन करना होता है।

घेरे के बीच में एक या एक से अधिक कुछ लोग प्रमुख लोक वाध्य यंत्र "हुड़का" से गीत के धुनों को संगीत दिया जाता है । झोड़ा-चाँचरी लगते तो एक जैसे हैं पर झोड़ा और चांचरी के बीच के अंतर को उनकी गति और पद संचालन को देख कर समझा जा सकता है, झोड़ा नृत्य में "हुड़का" वादक द्वारा गीत के बोल पहले बोले जाते हैं और बाकीं लोग उसे दोहराते हैं, झोड़ा कुमाऊं के दानपुर इलाकों में बहुत लोकप्रिय हैं। झोड़ा नृत्य में "हुड़का" वादक द्वारा गीत के बोल पहले बोले जाते हैं और बाकीं लोग उसे दोहराते हैं,

झोड़ा भी सामूहिक नृत्य-गीत हैं ,इन गीतों की परम्परा मौखिक होती है जो समाज की अमूल्य एवं अनुपम निधि है। इन लोकगीतों में हमारे समाज के विविध क्रिया-कलापों, विभिन्न अवस्थाओं, प्राकृतिक गतिविधियों व सामूहिक रूपरेखा, राजनीतिक चेतना, जीवन के संघर्ष, हर्ष-उल्लास साथ ही लय-ताल व सुर का हृदय ग्राही रूप देखने को मिलता है। उपयोगिता के आधार पर लोक गीतों के विभिन्न प्रकार है। संस्कार गीत, ऋतु गीत, श्रमगीत, इत्यादि अन्य प्रकारों में विषय प्रायः सामाजिक ही रहता है। अतः समाज का स्पष्ट स्वरूप इन गीतों में दिखता हैं।

झोड़ा चांचरी के बीच भगनौल को नहीं भुला जा सकता ,कुमाऊं के लोक गीतों -में भगनौल प्रमुख हैं, इन गीतों में सामाजिक जीवन एवं समस्याओं की विशेष चर्चा रहती है। ये विभिन्न मेलों एवं उत्सवों के अवसर पर गाए जाते हैं। इन्हें कई गायक अथवा गायिकाएँ मिलकर गाती हैं। मंगलसूचक एवं प्राकृतिक सौंदर्य की बहुलता होती है। कुमाऊं में लोक संगीत का इतिहास अत्यंत प्राचीन है|

कुमाऊनी लोक जीवन का सुंदरतम् प्रतिबिम्ब लोक नृत्य के लोक गीत और लोक संगीत में दिखाई पड़ता है| लोक गीत सरल, सुंदर, अनुभूतिमय और संगीतमय होते हैं| संगीत के बिना लोक जीवन प्राण रहित शरीर के समान है| लोक जीवन का स्वास्थ, उनके आनंद का रहस्य लोक गीतों और उनके संगीत में अंतर्निहित है|

लोक इतिहासकार कहते हैं- कुमाऊँ में लोक नृत्य के लोक गीतों को कृषि के गीत, संस्कार के गीत, जाति के गीत, क्षेत्र के गीत, ऋतु के गीत, बाल गीत, देवी देवता के गीत, लोक गाथा के गीत इत्यादी विभागों में बांटा जा सकता है| लगभग हरेक महीने में कोई न कोई त्योहार होता है| इसलिए यह उत्सवप्रिये समाज हर पल प्रसन्नता के क्षणों में जीता है| अपनी उत्सवप्रियता को वह गीत- संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करता है|

झोड़ा और चांचरी में चर्म-वाद्य हुडकी -

झोड़ा नृत्य-गीत में हुडकी अपना एक विशेष स्थान रखती है, जो नृत्य को गति के सांथ संगीत के स्वर देती है , यह कुमाऊँ का सब से प्राचीन और प्रमुख वाद्य है,जो अपनी ध्वनि से आंचलिकता को सुर में पिरो देता है.

झोड़ा नृत्य-गीत में आस्था, विश्वास विचार,, मान्यतायें, परम्परा, लोक विवेक व लोक मूल्य इत्यादि सन्निहित होते हैं और इन्हीं तत्वों के माध्यम से समाज की स्थिति, वास्तविकताओं केा समझा जा सकता है,कुमाऊँ की चांचरी / झोड़ा धार्मिक संध्या, में एक प्रशिद्ध इस धार्मिक गीत इस तरह से है, जो गाँव गाँव में सुना जा सकता है -

गौरी गंगा भागरथी को कें भलों रेवाड़
खोल दे माता खोल भवानी धरम केवाड़

के लै रैछे भेट बैणा के खौलू केवाड़
द्वी ज्वाड़ा निसाण लायूं त्यारा दरबार

गौरी गंगा भागरथी को कें भलों रेवाड़
खोल दे माता खोल भवानी धरम केवाड़

द्वी ज्वाड़ा नङरा लायूं त्यारा दरबार

गौरी गंगा भागरथी को कें भलों रेवाड़
खोल दे माता खोल भवानी धरम केवाड़

के लै रेछै भेट बैणा के खौलू केवाड़
सुनु को छतर लै रयूं त्यारा दरबारा

गौरी गंगा भागरथी को कें भलों रेवाड़
खोल दे माता खोल भवानी धरम केवाड़

लोक नृत्य कुमाऊँ की लोकसंस्कृति को दर्शाते हैं, ये मुख्यतया किसी भी शुभ कार्य पर आयोजित किए जाते हैं।

छोलिया लोकनृत्य

छोलिया लोकनृत्य वीरता का लोक न्रत्य है, कुमाँऊ के प्रसिद्ध छोलिया नृत्य का इतिहास लगभग १००० साल पुराना है, जब विवाह तलवारों की नोक पर हुआ करते थे। इसे पांडव नृत्य का हिस्सा भी माना जाता है।आज छोलिया नृत्य, शादी विवाह में होता है, जिसमे मसकबीन, नगाड़े, झंकोरा, और रणसिंगा आदि वाद्य यंत्रों का भी उपयोग किया जाता है। आज भी पहाड़ों की शादियों में ध्वज ले जाने की परंपरा है। जब दूल्हा अपने घर से निकलकर दुल्हन के घर जाता है तो आगे सफेद रंग का ध्वज (निशाण) होता और पीछे लाल रंग का। यह प्रथा भी सैकड़ों वर्षों से चली आ रही है।

कुमाऊँ में प्रचलित छोलिया नृत्य नगाड़े की थाप पर होता है। सफेद चूड़ीदार पजामा और लम्बा चोला, सिर पर सफेद पगड़ी आदि पारम्परिक परिधान पहने जाते । छोल्यारों के पास लंबी-लंबी तलवारें होती हैं। हाथ में होता हैं बड़ा ढाल। नगाड़े की थाप पर छोल्यार खूब थिरकते हैं। युद्ध की कला स्पष्ट होती है। एक दूसरे पर तलवार से वार और बचाव। इस युद्ध को नृत्य युद्ध या शस्त्र युद्ध भी कहा जा सकता है।

इसमें मुख्यत: दो नर्तक होते हैं लेकिन कई अवसरों पर एक से अधिक नर्तक भी बड़ी खूबसूरती से इसका प्रदर्शन करते हैं। इन नर्तकों ने रंग बिरंगी पोशाक पहनी होती है। चूड़ीदार सलवार, लंबा घेरेवाला चोला, सिर पर पगड़ी, कमर में बेल्ट, दोनों कंधों से बंधे हुए लंबे मफलर, पैंरों में घुंघरू, कानों में बालियां और चेहरे पर चंदन व सिंदूर से किया गया श्रृंगार। नर्तक एक दूसरे को छकाने, तलवारबाजी और उसे बड़ी कुशलता से ढाल से टकराने का शानदार प्रदर्शन करते हैं। इस दौरान उनके चेहर के हाव भाव भी देखने लायक होते हैं। कई बार ऐसा लगता है कि मानो वे एक दूसरे को चिढ़ाकर उसे उकसा रहे हैं।

ढाल-तलवार के इस युद्ध में छोल्यार अपने हाव-भाव से एक दूसरे को छेड़ने, चिढ़ाने, उकसाने के साथ ही भय व खुशी के भाव आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। इस नृत्य में गायन नहीं होता अपितु नगाड़े की थाप पर कभी धीरे-धीरे तो कभी-कभी तेज गति से यह नृत्य होता है। यह नृत्य केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है। इस नृत्य में प्रायः दो लोग जोड़ी में अपना करतब दिखाते हैं परन्तु द्वाराहाट के स्याल्दे-बिखौती मेले में एक साथ 3 या 4 जोड़े भी एक साथ इस नृत्य को करते हैं। सभी प्रशिक्षित होते हैं इसलिये एक सा नृत्य करते हैं। बड़े बुजुर्ग बताते हैं कि यह नृत्य राजाओं का नृत्य है जो वीर रस का प्रतीक है।कुमाऊँ के मेलों एवं उत्सवों में ऐसे सभी नृत्यों का आयोजन होता है जिन्हें वहाँ के लोगों ने अपने जीवन दर्शन में पूर्णत: स्थान दे दिया है । इस नृत्य को करने वालों को छोल्यार कहा जाता है। यह नृत्य प्रायः पुरुषों द्वारा किया जाता है। यह नृत्य यहाँ श्रृंगार व वीर रस दो रूपों में देखने को मिलता है। इस नृत्य में नगाड़ा, दमुवा, रणसिंग व भेरी बजाने वाले होते हैं जो कि पारम्परिक रूप से इस व्यवसाय से जुड़े हैं, दूसरी ओर तलवार और ढाल से छोलिया नृत्य करने वाले छोल्यार अपनी दूसरी आजीविका में व्यस्त रहते हैं। मेले व विवाह समारोहों में तो अब इसका प्रचलन कम ही हो गया है। अब बजाने वाले जानकार भी कम होते जा रहे हैं। अल्मोड़ा, पिथौरागढ़ व चंपावत में छोलिया नृत्य ढोल व दमुवे की थाप पर होता है। यहाँ के छोलिया नृतक रंग-विरंगे परिधान में रहते हैं। यहाँ ढोल बजाने वाला भी आकर्षक कपड़े पहनता है। वह ऊपर-नीचे विभिन्न मुद्राओं में ढोल के साथ नृत्य करता है।

छोलिया नृत्य करने वाले कलाकारों के हाथ में छोटी तलवार व कांसे की ढाल होती हैं। इस छोलिया नृत्य में वीर रस का पुट होते हुए भी श्रृंगार रस की प्रधानता होती है। बताया जाता है कि यह नृत्य चंद राजाओं के समय से यहाँ प्रारम्भ हुआ। पहले यह राजा सोमचंद के विवाह अवसर पर हुआ। आज यह नृत्य काफी प्रचलन में है।

कुमाऊं के जनजाति लोकनृत्य

कुमाऊं में भोटिया जनजाति निवास करती है ,जो उत्तराखण्ड के तिब्बत से लगे सीमान्त इलाकों के निवासी हैं, इन्हें शौका जनजाति के नाम से भी जाना जाता है. इनकी आबादी पारम्परिक रूप से मुख्यत: पिथौरागढ (धारचूला, मुन्स्यारी, डीडीहाट विकास खण्ड), बागेश्वर (दानपुर क्षेत्र), अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्र में निवास करती है , भोटिया जनजाति के लोग परम्परागत रूप से तिब्बत के "खम्पा" व्यापारियों के साथ वस्तु विनिमय के आधार पर व्यापार करते थे।16वीं शताब्दी के में दुगलत मिरजा ने "तारिक-ए-रसिदी" नामक पुस्तक में भोटिया और तिब्बत्तियों के बीच होने वाले इस व्यापार

का वर्णन किया है. शौका क्षेत्र के नृत्य अत्यंत आकर्षक होते हैं । यहाँ का प्रत्येक प्राणी नृत्य-पटु होता है, यहाँ के नृत्यों में ढोल, दमु वा, मुरली और बाँसुरी 'बिणई' का प्रयोग होता है ।

भोटिया समाज में भी वीरता को कला में महत्व दिया है ।यहां भी छोलिया नृत्य में वीरता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है । विशेष नृत्य की पौशाक में जब नर्तक वीरता की कलाबाजियाँ ढाल-तलवार के साथ दिखाते हैं तो यह नृत्य दर्शकों को अपने आप में पूर्णत: बाँध लेता है ।

इनकी भेषभूषा में सादगी होती है. ,पदों का संचालन लयमय होता है ,कुमाऊनी छोलिया नृत्य की अपेक्षा यहां आक्रमकता कम है ये नृत्य अपने हाव-भाव, पहनावे और अंग-संचालन से वीरता और बहादुरी के भाव व्यक्त करते हैं। ऐसे नृत्यों में इतिहास भी जीवंत हो उठता है। दारमा घाटी में छोलिया का अपना महत्त्व है. दारमा व्यास चौदास में शौका संस्कृति के नृत्यों की ऊर्जा उनको महत्वपूर्ण बना देती है।

मानस एवं रंजन संस्कृत के इन शब्दों से व्युप्तन्न मनोरंजन शब्द का अर्थ है, मन की प्रसन्नता, बौद्धिक तथा शारीरिक श्रम के बाद मनुष्य मन ही मन थक जाता है| उस समय जैसे शारीरिक थकान मिटाने के लिए विश्राम और कुछ खाने की आवश्यकता होती है| वैसे ही पहाड़ों में भी मन की थकान मिटाने के लिए मनोरंजन की जरुरत होती है,और उस से उत्पन्न होता है डंडयाला लोकनृत्य , डंडयाला नृत्य स्री - पुरुषों का नृत्य गीत है ,| स्री-पुरुष अपने दोनों हाथों में दो डण्डे लेकर गोल घेरे में आगे-पीछे घूम कर डण्डों का कलात्मकता से आपस में छूकर नृत्य करते हैं । इस नृत्य में पदों का संचालन गतिमान अग्र दिशा में होता है ,जिससे नृत्य में अनोखी गति मिलती है।.

चम्फूली नृत्य भी गोल घेरे में हाथ पकड़कर किया जाता है यह नृत्य घेरे में घूमकर पदसंचालन के सांथ ताली बजा-बजाकर एक-दूसरे की तरफ मुड़कर नाचते हुए सम्पन्न किया जाता है । इसमें धीमी गति होती है , ताली की लय पद संचालन को गति देती हैं।। चम्फूली नृत्य मे समाज के रीति-रिवाज को सुव्यवस्थित, और आसानी से देखा जा सकता है उनकी आध्यात्मिक क्षमता का प्रदर्शन वाकई अद्भुत है। इन लोक नृत्यों में लोक कलाकारों और दर्शकों में कोई अंतर नही है। अधिकांशतः लोक नृत्य बहुत आसान है लेकिन इस सादगी के नीचे परिकल्पना की गहराई और अभिव्यक्तता की प्रत्यक्ष्त्ता है जो एक उच्च कलात्मकता व्यवस्था है।

कुमाऊनी लोक नृत्यों की विशेषता -

कुमाऊनी का सम्बन्ध हिमालय की सभ्यता के साथ जुड़ा हुआ है| यहां लोक-जीवन, लोक-संस्कृति और लोक-परंपरा, प्रथाओं का सामावेश है,यहां आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक, भाषा-शास्त्रीय जैसे विषयों का समावेश है। मध्य काल में कुमाऊं में लोकनृत्य धर्म ,त्योहार ,उत्सव , रीति-रिवाज,मान्यतायें,विश्वास में महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए थे, कुमाँऊ में कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन या खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह लोकनृत्य का महत्त्व बढ़ गया था । कुमाँऊ में लोकनृत्य की परंपरा अलग- अलग शैली में हर जगह लोक संस्कृति के वाहक के रूप में मौजूद है ।

कुमाऊनी लोकनृत्य में लोकगायन शैली के लोक रंग शामिल हैं, इन गीतों में मौसम का वर्णनं मिलता है,ये श्रॅम के लोकनृत्य है, लोक नृत्य -गीतों की एक लम्बी कड़ी है,लोकगीतों में न्यौली परम्परा है , लोक नृत्यों म छपेली, चांचरी में गीत समाये हैं । मध्य काल में कुमाऊँ में मेलों एवं उत्सवों में नृत्यों का आयोजन शुरू होने लगा है ,जिन्हें जीवन दर्शन में पूर्णत: स्थान दे दिया गया था।

कुमाँऊनी लोकनृत्य परम्परा मध्यकाल से ही लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगी ।कुमाऊं के विभिन्न अंचलों के अपने-अपने तरह के लोकनृत्य होने लगे, उनमे गीत शामिल होने लगे , गीतों में विविधता पायी जाने लगी .इन नृत्यों में पशुओं के लिए भी पर्याप्त स्थान होने लगा क्यों की यहाँ धर्म,पशु और इंसानी रिश्ते थे , नृत्य में श्रॅम के गीत थे,धार्मिक और सामजिक गीत थे ,लोक-गीतों में प्रयुक्त शब्दों द्वारा तत्कालीन समाज की अर्थव्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है।

कुमाँऊनी लोकनृत्य के सन्दर्भ में यहाँ के लोकसाहित्य में समाज के अध्ययन की बहुत सारी सामग्री मिलती है। जिनमे लोक-गीतों में समाज का वर्णन अत्यधिक है जिससे समाज के मनुष्यों का रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीति-रिवाज, आदान-प्रदान, मान्यताएँ, रूढियाँ, लोक-विश्वास व परंपराओं, उनका पशु-पंखी-प्रकृति से संबंध, उनकी बोली-बानी आदि का पता चलता है। लोक नृत्य के गीत जो लोक-साहित्य का हिस्सा हैं वो मानवशास्त्र, भाषा-विज्ञान व समाजशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक व ठोस सामग्री है।

कुमाऊँ के हर हिस्से के मूल निवसियों ने अपनी लोक संस्कृति की रक्षा की है। इसलिए लोकनृत्य यहां प्रकृति की गोद में पनपते है। लोक नृत्य में अविश्वास का कोई स्थान नहीं रहता। लोक संस्कृति में श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है, वह अन्तः जनजीवन में सतत प्रवाहित हुआ करती है। यहां की लोक संस्कृतियों का बीज एक ही है। लोक संस्कृति बहुत व्यापक है, वहाँ वह सब कुछ है जो लोक में है, लोक संस्कृति लोक से छन-छन कर आती है, लोक से हटकर जब हम उसकी व्याख्या करने लगते हैं तो उसकी तमाम बातें दैनिक जीवन में इनका भरपूर प्रयोग भी देखा जा सकता है पर जब इनकी आप व्याख्या करने बैठ

जायें तो कोई गाँव, कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है जहाँ लोक जीवन में इनका महत्व ना हो , मन की ग्रंथि खुल कर साफ हो जाती है। लोक परम्पराओं में से अच्छी अच्छी बातें निकल निकल कर कालांतर में लोक संस्कृति बनती रहती है, लोक संस्कृति अन्तस में रची बसी होती है।

कुमाऊनी लोक नृत्य की परंपरा अपने में परिवर्तन करके उसे उत्तम बनाती है। इसका मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। इस प्रकार नृत्य का मनोविज्ञान से संबंध होना स्वाभाविक है पर इस संबंध में मनोविज्ञान को आधार लोक सोच प्रदान करता है। कुमाऊं के लोकनृत्य विभिन्न कलाओं के पारखी प्राश्निक अलग- अलग सामाजिक संरचना के साथ दीक्षित-निर्मित हुए हैं।

इन सभी लोकनृत्यों में लोक संसार के सभी गुण समाये हैं,तभी तो लोक गीत में धार्मिक रंगों के साथ जीवन की समस्याएं ,उनसे जुड़े सवाल को देखा जा सकता है, चाहे लोक गीत किसान की फसल के संबंध में गाया जाय या बीजों की बुवाई या कटाई या त्यौहार इत्यादि के बारे में ,सब दशा में लोक ही महत्वपूर्ण होता है ,जो लगातार बदलाव को समाये है ।

सामाजिक, धार्मिक और वैवाहिक स्तर पर इन लोकनृत्यों को कई तरीकों से बटे देख सकते हैं । ग्रामीण हो या शहर ,सब जहग कई नृत्य ऐसे हैं जिनमें पुरूष और महिलाएं साथ में नृत्य करते हैं।जिनमे समाज के रीति-रिवाज को सुव्यवस्थित, और आसानी से देखा जा सकता है उनकी आध्यात्मिक क्षमता का प्रदर्शन वाकई अद्भुत है। इन लोक नृत्यों में लोक कलाकारों और दर्शकों में कोई अंतर नही है। अधिकांशतः लोक नृत्य बहुत आसान है लेकिन इस सादगी के नीचे परिकल्पना की गहराई और अभिव्यक्तता की प्रत्यक्त्ता है जो एक उच्च कलात्मकता व्यवस्था है।

सूक्ष्म दृष्टि से यदि देखा जाए तो कुमाऊं के लोकनृत्य के लोक गीतों की भाषा की केवल बाह्य संरचना ही नहीं होती; अपितु आंतरिक संरचना भी होती है। बाह्य संरचना में जहाँ हम भाषा का ध्वनि, शब्द, रूप का वाक्यपरक अध्ययन करतें हैं, वहीं आंतरिक संरचना का संबंध मनुष्य की मानसिक प्रक्रिया से जुड़ा होता है।

मनुष्य की मन:स्थिति का अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है, सच तो यह है कि बोलते और सुनते समय आंतरिक संरचना ही प्रमुख होती है क्योंकि दोनों स्थितियों में हमारा मस्तिष्क ही क्रियाशील रहता है अर्थात् भाषाविज्ञान की वह शाखा जिसका अनुप्रयोग मनोविज्ञान के आधार पर हो, मनोभाषाविज्ञान है।

कुमाऊं के लोकनृत्य में संगीत, नृत्य, सभी कलाओं के माध्यम अलग – अलग है किंतु रस की अभिव्यक्ति और अनुभूति सभी कला रूपो में समान रूप से होती है। इसी लिए सब प्रकार के लोकनृत्य में कलाकारों ,जान समूह और प्रेक्षकों को अलग-अलग स्तर पर रसानुभूति होती है।

यह रसानुभूति की प्रक्रिया नृत्य में बहुत सहज होती है। नृत्य व संगीत प्राचीन काल से इंसान के जीवन का अटूट हिस्सा रहा है। एक मान्यता के अनुसार शब्दों की ईजाद से पहले संकेत और मुद्राओं के माध्यम से इंसान ने अपने भाव जैसे प्रेम, वात्सल्य, क्रोध, भय, दया आदि की अभिव्यक्ति नृत्य, संगीत व चित्रों के ज़रिये की। यह कलाएं हमारे जीवन में इतना घुल मिल जाती हैं कि, हमें यह आभास भी नहीं होता कि हम साझी विरासत जी ही नहीं रहे हैं बल्कि इसे और विकसित कर रहे हैं। बदलते मौसम, त्यौहार हम आपस में मिलकर मनाते हैं। फसल काटना, सावन का आना, नई फसल बोना, इन सबका हमारे जीवन में महत्व है और हम इसकी अभिव्यक्ति संगीत, नृत्य हैं

कुमाऊं के हर इलाके की अपनी एक खास शैली होती है ,शादी-ब्याह, सगाई, जन्म आदि को लोकसंगीत, लोकनृत्य के माध्यम से सामूहिक रूप से मनाते हैं। लोकनृत्य, समाज व इंसान का अभिन्न अंग है। इस कला में अपने शरीर के माध्यम से इंसान अपनी बात कहता है। लय, ताल व सुरों में पिरोकर वह अपनी बात अपने सम्पूर्ण शरीर के माध्यम से लोगों तक पहुंचता है। जहां एक ओर लोक नृत्य में सरलता व सहजता होती है वहीं शास्त्राय नृत्यों में शैलीगत भाव भंगिमाओं का वर्चस्व होता है। लोक और शास्त्रीय नृत्य दोनों ही आम इंसान के जीवन काल की गाथा बताते हैं। लोक नृत्य परम्परा इतने सालों से जीवित है, बल्कि अपनी अंदरूनी शक्ति व सजीवता से कला को नए रूप देने में सक्षम है

बहुत से नृत्य मुख्य रूप से कुमाऊं क्षेत्र का सामूहिक नृत्य-गीत है,इन लोक नृत्य में नर नारी नर्तक को लोक वाद्य का सुर पकड़ना होता है जिसमे "हुड़का" सब से प्रमुख होता है जिसका हम पहले भी कह चुके हैं की नर्तक सहारा लेता है । बहुत से लोक नृत्य में एक गोल घेरा बनाकर एक दूसरे के कंधों या कमर में हाथ रखकर गतिमय ढंग से पाँव और स्वरों का तालमेल बिठा कर ,लय बनाकर धीरे धीरे नाच और लोकगीत गायन करना होता है। ये देखने वाला क्षण होता है जब नृत्य में शामिल जान समूह सब कुछ भूल ईश्वर में लींन हो जाता है

लोक नृत्य घेरे में वादक एक या एक से अधिक लोक वाध्य यंत्र "हुड़का" से लोक गीत के धुनों को तान दे आकर विषय को जिवंत कर देता और यह बड़ा ही मनोहारी दृस्य होता है। "हुड़का" वादक द्वारा गीत के बोल पहले बोले जाते हैं और बाकीं लोग उसे दोहराते हैं ,यह सामूहिकता जीवन का दर्शन है,जब लोक का संसार एकाग्रता से प्रकृति का कला से समावेश कर देती है

.बहुत से लोक नृत्यों में च दो ग्रुप बन जाते हैं जिसमें से एक ग्रुप दूसरे के गीत के बोलों को दोहराता है। यह लोकगीत संबन्धित लोकदेवता के साथ साथ, प्रेम - श्रृंगार , जीवन-शैली पर आधारित होते हैं। यह लोक गीत श्रम परिहार मनोरंजन और आशु कवि की अभिव्यक्ति की मधुर गुंजार है, जो श्रृंगार प्रधान है

यहाँ के नृत्य ,लोक नृत्य वस्तुत: प्राकृतिक नृत्य से जुड़े मानवीय कला के सूचक है है। ये लोक जीवन में अनुकूल किसी न किसी प्रकार के नृत्य का संसार सामने लाते हैं इन लोक जीवन नृत्यों में कला तो स्वाभाविक और गति तो होती है लेकिन कलात्मक इस का एक बड़ा गुण होता है ।

कुमाऊँ में लोक नृत्य और लोकगीतों के माध्य से सामाजिक एकता और नविन चेतना का विकास होता है ,लोक गीतों की भाषा में निम्न इलाकों में बदलाव देखा जा सकता है,लेकिन भाव एक हैं

- काली कुमाऊँ
- सोर
- पाली पछाऊँ
- दानपुर

अस्कोट

धारचूला

मुंस्यारी

तराई के इलाके

भाभर के इलाके

कुमाऊं के लोगों का मुख्य पेशा कृषि है । पशुपालन उनका सहायक पेशा है । पशु कृषि कार्य में उनका सहयोग करते हैं । लोकनृत्य मनुष्य की वह सामान्य प्रतिक्रिया है जिसके द्वारा वह खुद को सामने लाता है । उसका पशु से सीधा सम्बन्ध है इसी आधार पर व्यक्ति और वस्तुओं का मूल्यांकन करता है।। इसका घनिष्ठ संबंध व्यक्ति के अमूर्त विचार तथा कल्पना से ही है।

कुमाऊं के लोकनृत्य में यह देखा गया है कि लोक नृत्य मन की उतपति है, मन और शरीर का आपस में गहरा सम्बन्ध है। जब मन शान्त होता है तो शरीर को शकून महसूस होता है तभी तो मनुष्य कला को जनम देता है ।

लोक कलाकारों की रचनाओं की समीक्षा करना कोई आसान काम नहीं, वह तो साधना है। इसमें कलाकार की कला के साथ परंपरा का दृष्टिकोण भी सम्मिलित है। अलग-अलग दृष्टिकोण से देखने पर लोक नृत्य के लोक गीतों की रचना का स्वरूप बदलता नहीं पर नयापन जरुर ले आता है, गहराई में जाते ही वास्तविकता दृष्टिगोचर होती है। लोकनृत्य गीतों में अभिधात्मक अर्थ की अपेक्षा व्यजनात्मक अर्थ ही प्रिय लगता है। समय के बहते निरंतर बहाव से उसके प्रवाह में निश्चितता आती है।

लोक, पारम्परिक नृत्य,यह कलाएं सरल होती हैं व आम दिनचर्या के इर्द-गिर्द घूमती हैं। पुरुष, महिलाएं व बच्चे सामूहिक नृत्य के माध्यम से हर पर्व व मौसम को हर्ष और उल्लास के साथ मनाते हैं। यहां कलाकार और दर्शक में कोई अंतर नही होता, सब इसका हिस्सा होते हैं, सहभागी और सृजनकर्ता होते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों के संगीत, तान, लय, वाद्य और नृत्य में असाधारण समानता दिखाई देती है।

यहां तक कि मुद्राओं और नृत्य में शरीर के विभिन्न अंगों के इस्तेमाल में भी समानता नज़र आती है। यही साझी विरासत है। हिमालय के उतार-चढ़ाव, चोटियां और घाटियां, लहराते नज़र आते शिखरों से मेल खाती नृत्य मुद्राएं इन क्षेत्रों की विशेषता हैं। फैलती बाहें पैरों और घुटनों की लचक से लेकर कमर और गर्दन से जुड़ी मुद्राएं यही सब कुछ दर्शाती हैं

कुमाँऊ में कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन या खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह लोकनृत्य का महत्त्व है।
कुमाँऊनी लोकनृत्य परम्परा मध्यकाल से ही लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगी ।

कुमाऊं के विभिन्न अंचलों के अपने-अपने तरह के लोकनृत्य होने लगे, उनमे गीत शामिल होने लगे , गीतों में विविधता पायी जाने लगी .इन नृत्यों में पशुओं के लिए भी पर्याप्त स्थान होने लगा क्यों की यहाँ धर्म,पशु और इंसानी रिश्ते थे , नृत्य में श्रॅम के गीत थे,धार्मिक और सामजिक गीत थे , इन लोक नृत्यों में छपेली, चांचरी और झोरा मुख्य थे, जिनमे छोलिया नृत्य भी शामिल हो गया जो पारम्परिक धर्म ,त्योहार , पर्व ,उत्सव , रीति-रिवाज,मान्यतायें,विश्वास में महत्वपूर्ण हिस्सा बन गए थे.

आधुनिक परिवेश के समयचक्र में पहाड़ों से बहुत सारे लोक नृत्य लुप्त होते जा रहे हैं, जिन को संकलित करना आवश्यक है ।धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से इसका महत्व है, कुमाँऊ में लोक की परंपरा में लोकनृत्य अलग अलग शैली में हर जगह लोक संस्कृति के रूप में मौजूद है । सचमुच में कुमाऊनी लोक नृत्य वह कला है जो जीवन को आनंद से आल्हादित कर देती है और मन को शांति देती है ,कुमाऊनी लोक नृत्य वस्तुत: प्राकृतिक नृत्य है। कुमाऊनी लोक नृत्य की विचारधारायें एक ऐसी विशिष्ट रचनादृष्टि के निर्माण में हमारी मदद करती हैं जिसे हम 'प्रतिबद्धता' के नाम से जानते हैं 'प्रतिबद्धता' समाज और साहित्य के प्रति एक सजग दृष्टिकोण है ,जिसका सीधा सम्बन्ध हमारे जीवन और रचनाकर्म से होता है

पर्वतीय अंचल का जीवन इतना कठोर व श्रम संध्यया है कि मेलों-त्यौहारों के माध्यम से ही वे अपने तन व मन की थकान को मिटा पाते हैं उन्हीं मेलों त्यौहारों में गाये जाने वाले लोकनृत्य व लोकगीतों की एक विद्या ''छपेली'' है 'जिसमें श्रृंगार रस के सभी रंगों को देखा व सुना जा सकता है,जिन्हें कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि पूरा लोक समाज अपनाता है। सामान्यतः लोक में प्रचलित, लोक द्वारा रचित एवं लोक के लिए लिखे गए गीतों को लोकगीत कहा जा सकता है। लोकगीतों का रचनाकार अपने व्यक्तित्व को लोक समर्पित कर देता है।

उत्तराखंड की विभिन्न लोक कलाओं के बीच कुमाँऊनी लोक नृत्यों में लोकगीत परम्परा लोगों के बीच लोकप्रिय होने लगी । इनमे परंपरा और जीवन शैली के विभिन्य रूप शामिल है, ये श्रॅम के गीत है, ऋतु से जुड़े गीत हैं, कुमाऊं मे बच्चे के जनम संस्कार से लेकर विवाह संस्कार तक लोक गीतों की एक लम्बी कड़ी है.लोकगीतों में न्यौली परम्परा है , लोक नृत्यों में गीत छपेली, चांचरी में समाये हैं ओर शगुराखरों में संस्कार है।

कुमाऊं में होली सिर्फ रंगो से ही नहीं बल्कि रागों से भी खोली जाती है। पौष माह के पहले सप्ताह से ही तथा बसन्त पंचमी के दिन से ही गांवों में बैठकी होली का दौर शुरु हो जाता है। होल्यार हारमोनियम, तबला और हुड़के की थाप पर भक्तिमय होलियों से बैठकी होली शुरु करते हैं।

इन होलियों को शाष्त्रीय रागों पर गाया जाता है, जिनमें दादरा और ठुमरी ज्यादा प्रचलित है। अधिकतर बैठकी होलियों में राग धमार से होली का आह्वान किया जाता है तथा राग श्याम कल्याण से होली की शुरुआत की जाती है, बीच में समयानुसार अन्य रागों पर आधारित होलियां गाई जाती हैं और इसका समापन राग भैरवी से किया जाता है। होली गीतों का एक रोचक परमपरा खड़ी और बैठी होली के रूप में है.

कुमाऊं में लोक गीत किसी भी सन्दर्भ में सुना जा सकता है ।इनमे में राजा रानी की कहानी है ,देव हैं राक्षक हैं ,परी और स्थानीय लोक नायक- नायिका हैं,किसान है ,मज़दूर है। मनोरंजन है तो वीरता ,प्रेम और त्याग का रूप भी हैं ,जो सुनने वाले को आनंदित कर देता है है।

लोक गीतों में जहां एक तरफ मनोरंजन है वहीँ दूसरी तरफ इनमे स्थानीय इतिहास ,राजनीति ,समाज और वय्वस्थाएँ सब समाहित है ,इस कारण भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में लुप्त होती इस लोक गायन कला परंपरा का सरंक्षण करना अत्यंत आवश्यक है ।

कुमाऊं में लोक गीत परंपरा कुमाऊं कमिश्नरी के पहाड़ी ज़िलों जैसे अल्मोड़ा. बागेश्वर , नैनीताल, पिथौरागढ़ ,चम्पावत में प्रचलित है , पिथौरागढ़ , चम्पावत नेपाल और तिब्बत से जुड़े ज़िले हैं, इसलिए इन इलाकों के गीतों में नेपाल और तिब्बत का भी प्रभाव आ जाता है।

उत्तराखंड के लोक जीवन से जुडी इस परम्परा की सामाजिक सोच में लगातार होता बदलाव और परम्परा का सामंजस्य साफतौर पर परिलक्षित होता है। हर लोक गीत केवल मनोरंजन ही नहीं देता बल्कि लोक जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों एवं उनसे सीख लेने की प्रेरणा भी देता हैं , हालांकि आधुनिक परिवेश के समयचक्र में पहाड़ों से बहुत सारे गीत लुप्त होते जा रहे हैं, जिन को संकलित करना आवश्यक है .

कुमाऊं में लोक नृत्य की लोक परम्परा को सिर्फ नृत्य के मनोरंजन से ही नहीं देखा जा सकता है, सभी जगह में यह परंपरा प्रचलित है की धर्म के सांथ लोक गीत के विषय जन जीवन से जुड़े है , जो केवल मनोरंजन ही नहीं बल्कि लोक जीवन के अच्छे-बुरे अनुभवों एवं उनसे सीख लेने की प्रेरणा भी देते हैं

कुमाऊं के विभिन्न अंचलों के अपने-अपने तरह के लोक नृत्य हैं उनमे गीत शामिल हैं , गीतों की लय में ,शब्दों में विविधता हैं.इनमें पशुओं के लिए भी पर्याप्त स्थान हैं, श्रॅम,धार्मिक और सामजिक कथ्य थे ,लोक नृत्य त्योहार , पर्व ,उत्सव , रीति-रिवाज,मान्यतायें,विश्वास में महत्वपूर्ण हिस्सा बन हैं . कुमाँऊ में कृषि कार्य हों ,गाँव का आँगन या खेत खलिहान ,मेले ,धार्मिक कार्यकर्म , लोक संस्कार या पारिवारिक मंगल कार्य सभी जगह लोक नृत्य दिखते हैं आज भी कुमाँऊ में नृत्य की परंपरा अलग - अलग शैली में लोक संस्कृति के वाहक के रूप में मौजूद है । आज कुमाऊ के लोक नृत्यों को उनकी शैली में रंगमंच में भी उतरा जाता है , जिससे इसमें अभिनय ,रस ,वाचन ,गायन और भाव भंगिमाएं समाहित हो जाती है ,यह सारे तत्व लोक नृत्य में मिलते हैं -

गीत

.गति -संगीत

कथोपकथन

देशकाल

गीत शैली और

लोक नृत्य -लोक गीत का उद्देश्य।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

संगीत का इतिहास और नवजागरण- डॉ. रामविलास शर्मा

इंडियन क्लासिकल डांस- कपिला वात्स्यायन

कत्थक प्रसंग- रश्मि वाजपेयी, लोकायन– डॉ. ओमप्रकाश भारती

एटकिन्सन, ईयटीय १९७३ द हिमालयन गजेटियर वा. क्ष् व क्ष्क्ष्। दिल्ली; कास्मो पब्लिकेशन।

पाण्डे बद्रीदत्त १९९० कुमाऊँ का इतिहास। अल्मोड़ा; श्याम प्रकाशन श्री अल्मोड़ा बुक डिपो।

नौटियाल शिवानन्द १९९८ कुमाऊँ दर्शन। लखनऊ; सुलभ प्रकाशन।

पहाड़ हिमालयी समाज, संस्कृति, इतिहास तथा पर्यावरण पर केंद्रित। डी. के फाईन आर्ट प्रेस।

मठपाल यशोधर १९९७ उत्तराखण्ड का काष्ठशिल्प। देहरादून; शिवा आफसेट प्रेस।

अग्रवाल, डी.पी. एवं एम.पी. जोशी १९७८ "रॉक पेंटिंग इन कुमाऊँ"। मैन एण्ड इन्वायरनमेंट भा. क्ष्क्ष् इंडियन सोसायटी फॉर प्रीहिस्ट्री एण्ड क्वार्टनरी स्टडीज (अहमदाबाद)।।

गरोला, टी.डी. १९३४ हिमालयन फोकलोर। इलाहाबाद।

डबराल शिव प्रसाद १९९० उत्तराखंड का इतिहास। गढ़वाल; वीर गाथा प्रकाशन।

पोखरिया देव सिंह १९८९ "कुमाऊँ के लोकनृत्य", उत्तराखंड भाग - ३। उत्तराखंड शोध संस्थान।

पांडे त्रिलोचन १९७७ कुमाऊँनी भाषा और उसका साहित्य। लखनऊ; उ.प्र. हिन्दी संस्थान।

मदन चन्द्र १९८१ उत्तराखंड का "पुरातत्व विशेषांक"।

वैष्णव यमुनादत्त १९८३ कुमाऊँ का इतिहास, "खस कस्साइट जाति के परिपेक्ष्य में"। अल्मोड़ा; श्री अल्मोड़ा बुक डिपो।

सांकृत्यायन राहुल १९५३ हिमालय परिचय। इलाहाबाद; लॉ जर्नल प्रेस ।

भट्ट,दिवा,उत्तराखण्ड की लोकसाहित्य परंपरा,श्री अल्मोड़ा बुक डिपो द माल अल्मोड़ा ,उत्तराखण्ड|

गढ़वाली भाषा एवं साहित्य का विकासात्मक परिचय

गढ़वाली साहित्य संकलन हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल,उत्तराखण्ड|

रावत ,हयात सिंह,सम्पादक 'पहरू',इंद्र सदन,सुनारी नौला अल्मोड़ा उत्तराखण्ड |